15342
15342
4306

गीता-प्रेस

द्वारा

मु
द्रि
त

श्री रामचरित-मानस

आठ
दो
ष
संयुक्त है।

★

दिग्दर्शक

आनन्द स्वामी,
मंगल-भवन, ऋषिकेश (हिमालय)

१००० प्रति] ★ [२४-७-५६

[इस पुस्तक के लिखने तथा छापने का पूर्ण दायित्व दिग्दर्शक के ऊपर है]

मुद्रक—विज्ञान प्रेस, ऋषिकेश

श्री रामचरित मानस के अनन्य उपासकों

का

कर्तव्य

गीता प्रेस ने धार्मिक साहित्य के प्रचार कर्तव्य द्वारा वर्तमान में आस्तिक जनता की अनुपम सेवा की है, इसे हम भी स्वीकार करते हैं। परन्तु किसी भी ग्रन्थ के मूल को विकृत करना ठीक नहीं है, क्योंकि आप्त पुरुषों के शब्दों में ही उनके स्वरचित मंत्रों की शक्ति निहित है ऐसा सर्व सम्मत है। हमने अपने विचार श्री राम चरित मानस के मूल पाठ संशोधनार्थ आपकी सेवा में उपस्थित करके अपने कर्तव्य का पालन किया है। इसे विचार-पूर्वक पढ़ने के उपरान्त यदि आप पुस्तकस्थ अष्ट दोषों के निवारण पक्ष में सहमत हैं तो कृपया अपनी शुभ सम्मति से दिग्दर्शक को कृतार्थ करें अथवा यदि आप इन आठ दोषों को दोष नहीं समझते या आपकी सम्मति में गीता प्रेस द्वारा मुद्रित पाठ ही शुद्ध पाठ है तो कृपया इन आठों प्रकार की दोष-रूप शङ्काओं का समाधान करने का कष्ट स्वीकार करें। यही मेरे बाल प्रयास का बहुमूल्य पुरुस्कार तथा आपका परमोपकारी कर्तव्य है।

—आनन्द

15342

मानसान्तर्गत कतिपय अनिवार्य संशोधन

श्री गोस्वामी तुलसीदास जी कृत राम-चरित मानस का मूल पाठ विभिन्न रूपों में प्रकाशित हो चुका है, परन्तु मेरा प्रस्ताव इस समय केवल गीता प्रेस द्वारा मुद्रित रामचरित मानस के अनिवार्य संशोधन को ही लक्षित कर रहा है, क्योंकि वर्तमान में गीता प्रेस द्वारा मुद्रित रामायण ही विशेष प्रचारित तथा प्रसारित हो रही है। साथ ही साथ जो न्यूनतायें, दोष तथा आविष्कारी रूप गीता प्रेस द्वारा प्रकाशित (मानस) में दृष्टिगोचर हो रहे हैं वे अन्यत्र नहीं पाये जाते। महान आपत्ति-जनक भयावह बात तो यह है कि कुछ समय पश्चात् यही पाठ प्रामाणिक सिद्ध हो जाने पर पुनः इसके संशोधन का विचार भी स्वप्नवत् हो जायेगा। अतएव इस संशोधन-प्रस्ताव पर धार्मिक, आस्तिक, साहित्यिक तथा मानस प्रेमी भावुक भक्त जनता का ध्यान आकर्षित करना अनिवार्य, आवश्यक तथा उचित कार्य समझकर यह रहस्योद्घाटन जनोपयोगी धार्मिक, सामाजिक तथा ऐतिहासिक कार्य रूप में जनता-जनार्दन के समक्ष उपस्थित कर देना ही श्रेयस्कर है।

गीता प्रेस द्वारा मुद्रित (मानस) आठ दोष संयुक्त है।

१—नामापराध २—शब्दों के अनर्थकारी रूप ३—मात्रा वृद्धि ४—असह्य वैय्याकर्णिक परिवर्तन ५—नागरी का नग्ननृत्य ६—अनुशासनहीन-सानुनासिकता ७—पाठ-लोप ८—छन्द-व्यतिक्रम।

१—नामपराध—प्रभु के नाम की महिमा अवर्णनीय है, यह सर्वशास्त्र सम्मत है। भगवान राम के पतितपावन मोक्ष-प्रद, शान्तिप्रद नाम को जिसे महर्षि नारद ने भगवान् श्रीराम से वर रूप में प्राप्त किया था।

यद्यपि प्रभु के नाम अनेका, श्रुति कह अधिक एकतें एका॥
३/४१/७

राम सकल नामन ते अधिका, होउ नाथ अघ खग गन वधिका॥
३/४१/८

उसी नाम को जिसकी महिमा (राम न सकहिं नाम गुण गाई) राम के स्थान पर रामु करके गीता प्रेस तथा उसके अधिकारियों ने महान् पाप किया है, जिसका प्रायश्चित होना भी असम्भव है, क्योंकि नश्वर जगत् में कृत घोरतम पापों का प्रायश्चित तो नाम द्वारा ऋषिवर्ग कथित है। परन्तु नामापराध का प्रायश्चित क्या होगा अथवा होना चाहिये इसका न्याय गीता-प्रेस सम्बन्धित तथाकथित-धर्मज्ञ ही करें।

राम के स्थान पर रामु—बाल काण्ड में ४० बार, अयोध्या काण्ड में १०४ बार, अरण्य में ५ बार, किष्किन्धा में ६ बार, सुन्दर में ४ बार, लङ्का में १२ बार तथा उत्तरकाण्ड में केवल ४ बार, कुल १७५ बार छपा है। अनुसंधान में इससे भी विशेष संख्या प्राप्त होने की आशा लेखक को भविष्य में है। इस विषय में जयदयालु जी गोयन्दका तथा "हनुमानु प्रसादु पोद्दारु" से सतत् प्रयत्न पूर्वक पत्र व्यवहार करने पर भी कोई उचित उत्तर अभी तक प्राप्त नहीं हो सका है, भविष्य की भगवान श्री राम ही जानें। उनके नाम की लाज उन्हीं के हाथ है। प्रमाण रूप समस्त विकृत स्थल उद्धरित नहीं किये जा सकते, केवल कचित आश्चर्य जनक स्थल पाठकों के सन्तोष-अर्थ उपस्थित हैं।

एक ही पंक्ति में उभय (राम तथा रामु)

कहु तजि रोषु राम अपराधू, सबु कोइ कहइ रामु सुठि साधू॥
२/३१/६

रामु साधु तुम्ह साधु सयाने, राम मातु भलि सब पहिचाने॥
२/३२/७

तजे रामु जेहि बचनहि लागी, तनु परिहरेउ राम बिरहागी॥
२/१७३/४

भरत सरिस को राम सनेही, जगु जप राम रामु जप जेही॥
२/२१७/७

छं०—निरुपम न उपमा आन राम समान रामु निगम कहै॥
७/९१/९

नोटः—२/३१/६ का अर्थ अयोध्या काण्ड ३१वें दोहे की छठी चौपाई है। इसी प्रकार अन्य को भी समझें।

यह है गीता प्रेस का अपना आविष्कार—

पुनश्च—दो०-परी न राजहि नीद निशि, हेतु जान जगदीसु,

रामु रामु रटि भोरु किय कहइ न मरमु महीसु।

इसके विपरीतः— २/३८/०

राम राम रट विकल भुवालू। जनु विनु पंख विहंग बेहालू॥

२/३६/१

पाठक आवश्यकतानुसार अन्य उद्धरण भी प्राप्त कर सकते हैं।

२–शब्दों के अनर्थकारी रूप—गीता प्रेस द्वारा मुद्रित मानस में केवल उँगलियों पर गिनने के योग्य स्थानों को छोड़ कर शेष समस्त स्थानों में गुरु को गुर कर दिया गया है, यह अत्याचार बाल काण्ड में २७ बार, अयोध्या में ५० बार, अरण्य में १ बार, किष्किन्धा में १ बार, सुन्दर में ४ बार, लङ्का में १ बार, तथा उत्तर में १८ बार निशङ्क होकर कुल १०२ बार किया गया है। क्या गुरु तथा गुर के अन्तर से भी गोस्वामी जी अनभिज्ञ थे ?

कतिपय स्थल—$१\frac{१६५}{५—६}$. $१\frac{३०}{१}$, $१\frac{०}{५}$, $१\frac{१४}{३}$, $२\frac{३२३}{१}$, $२\frac{३२१}{१\text{-}७\text{-}८}$, $२\frac{३२०}{०}$, $२\frac{३२२}{६}$, $२\frac{३१७}{१}$, $२\frac{३१६}{७}$ यह स्थल दर्शनीय तथा उल्लेखनीय हैं। वस्तुतः गुरु तथा बनिये के गुर (गुड़) में कोई अन्तर ही नहीं रहा।

नोटः—१/१६५/५-६ का अर्थ बाल काण्ड १६५वें दोहे की पाँचवीं तथा छठी चौपाई है। इसी प्रकार अन्य को भी समझें।

$१\frac{१६५}{५-६}$

प्रेम का पेम तथा पेमु—यह मनमानी भी गीता प्रेस द्वारा मुद्रित मानस में आदि से अन्त तक निभाई गई है प्रमाण स्वरूप कुछ स्थल दर्शनीय हैं—प्रेम का पेम $२\frac{२८५}{६}$, $२\frac{२३३}{३}$ $२\frac{३२२}{७}$, $२\frac{२८५}{०}$, $२\frac{३२४}{६}$ इत्यादि। प्रेम शब्द का दूसरा रूप इन अधकचरे सम्पादकों ने पेमु भी कर दिया है जैसे—
$२\frac{२९३}{०}$, $२\frac{३२६}{०}$, $२\frac{३०८}{४}$, $२\frac{२८६}{१}$ इत्यादि।

बट का बटु—बट शब्द का अर्थ बड़ वृक्ष है इसे भी व्यवसाय स्वार्थी लोगों ने बटु का रूप दे दिया है जिसका अर्थ "ब्रह्मचारी वेद पाठी" होता है जैसेः— $१\frac{१}{११}$, $२\frac{१२३}{३}$, $२\frac{२८५}{६}$ इत्यादि

मन का मनु—मन शब्द हृदय का द्योतक है इसे भी धर्म के ठेकेदारों ने मनु का रूप देकर अपनी धार्मिक साहित्य विज्ञता का पूर्ण प्रमाण प्रस्तुत किया है जब कि मनु शब्द महाराजा मनु का द्योतक है।

उदाहरणार्थ—$१\frac{६}{१}$, $१\frac{४६}{५}$, $२\frac{१}{०}$ इत्यादि स्थल दर्शनीय तथा विचरणीय हैं।

बर का बरु—वर शब्द का अर्थ कहीं-कहीं वरदान, दूल्हा, तथा श्रेष्ठ, प्रसंगानुसार किया जाता है परन्तु इन हास्यास्पद कार्य कर्ताओं ने इसे बरु का रूप देकर अनहोनी को होनी कर दिखाया क्योंकि बरु शब्द का अर्थ वरन, बल्कि ऐसा प्रसिद्ध है।

देखिये:—१ ६४/८, १ ७६/१, १ ७६/४, १ ७६/५, आदि

तर का तरु—

तासु दूत की बंध तरु आवा, प्रभु कारज लगि कपिहि बँधावा।

यहाँ बंध तर आवा के स्थान में बंध तरु आवा पाठ भी गीता प्रेस के उकार उलूक सृष्टि का परिचायक है।

३—मात्रावृद्धि—मात्रा वृद्धि में तो गीता प्रेस के अधिकारियों ने मानों अपनी समस्त विद्वद्दक्षमता को सकेल कर मानस में सँजो दिया है यह अपराधरूप आविष्कार मानस में हजारों की संख्या में है। प्रमाणतः बालकाण्ड में ७७० बार, अयोध्या में ११५२ बार, अरण्य में ३० बार, किष्किन्धा में १६ बार, सुन्दर में ६० बार, लंका १५८ बार तथा उत्तरकाण्ड में केवल ७२ बार कुल २२६१ बार। यह गणना न्यूनतम है।

दिग्दर्शनार्थः—

सो०—संकर चापु जहाजु, सागरु रघुवर बाहुबलु ॥
बूड़ सो सकल समाजु चढ़ा जो प्रथमहिं मोहवस॥ १/२६१/०
दो०—राम रूपु भूपति भगति ब्याहु उछाहु अनंदु
जात सराहत मनहिं मन मुदित गाधिकुल चंदु ॥ १/३६०/०

सिय मनु राम चरन अनुरागा, घरु न सुगम बनु विषमु न लागा ॥
२।७७।५

नहिं पदत्रान सीस नहिं छाया, पेमु नेमु व्रतु धरमु अमाया ॥
२/२१५/५

चौ०-धूप धूम नभु मेचक भयऊ, सावन घन घमंडु जनु ठयऊ ॥
१।३४६।१

चौ० संगमु सिंहासनु सुठि सोहा, छत्रु अछय वटु मुनि मनु मोहा ॥
२।१०४।७

४-असह्य वैय्याकर्णिक परिवर्तन—जिस प्रकार प्रत्येक भाषा का अपना अपना व्याकरण है उसी प्रकार श्री हनुमानु प्रसादु पोद्दारु के मतानुसार रामायण की मूल भाषा अवधी का भी अपना पृथक व्याकरण है और उस व्याकरण की प्रथानुसार विभक्ति रूपान्तर विधानान्तर्गत अकारान्त पुंलिग संज्ञा शब्दों के एक वचन और कर्ताकारक में इनके अन्त के अकार का उकार कर दिया गया है, ऐसा 'कल्याण' के सम्पादक उपरोक्त स्वनाम धन्य श्री 'पोद्दारु' महोदय लिख कर भी दे चुके हैं।

सम्भवतः उसी प्रथा के प्रभाव दोष के वशीभूत इन प्रेस के भूतों ने निम्न आश्चर्य जनक असह्य तथा अनर्थकारी प्रयोग रूप वैय्याकर्णिक परिवर्तन भी कर डाला है।

अवसि देखिये देखन जोगू

मरम वचन सीता जब बोला, हरि प्रेरित लछिमन मन डोला ॥
३।२७।५

इस चौपाई में बोला तथा मन डोला विचारणीय हैं। पता नहीं यह अवधी का 'पोद्दारु' व्याकरण और किन किन आकाश पुष्पों का निर्माण करेगा ? जिसमें लिंग भेद को भी मिटा दिया गया है ।

तासु दूत कि बंध तरु आवा, प्रभु कारज लगि कपिहिं बँधावा ।
५।१६।४

यहाँ कपिहिं बँधावा अन्य पुरुष का द्योतक है जब कि इस स्थान पर आप सर्वनाम उत्तम पुरुष का प्रयोग होना अनिवार्य था। क्योंकि हनुमान जी ने किसी अन्य कपि को नहीं स्वयं अपने आप को बँधवाया था ।

जो सुमिरत सिधि होइ, गन नायक करिवर वदन ।

यह छन्द मानस के प्रारम्भ का प्रथम सोरठा है जो सुमिरत से क्या अर्थ होता है ? इसे गीता प्रेस के पदाधिकारी भी समझा सकेंगे या नहीं मुझे शंका है परन्तु इस जो के स्थान में जेहि सर्वनाम ही व्याकरण का मर्यादा सम्पन्न सुन्दर श्रेष्ठ तथा मार्मिक प्रयोग है ।

अजर अमर गुण निधि सुत होहू, करहुँ बहुत रघुनायक छोहू ।
५।१६।२

पुनश्च

करहुँ कृपा प्रभु अस सुनि काना, निर्भर प्रेम मगन हनुमाना ।
५/१६/४

करहु शब्द आज्ञा सूचक है। श्रीजानकीजी तथा पवन कुमार दोनों क्रमशः उपरोक्त दोनों चौपाइयों के वक्ता हैं। मेरी बुद्धि में

ही नहीं वरन् किसी भी साहित्यिक मानसप्रेमी की बुद्धि में श्री जानकी जी तथा मारुति नन्दन द्वारा प्रभु के लिये आज्ञा सूचक शब्द का प्रयोग सर्वथा अनुचित, निन्दनीय तथा मर्यादा के शत-प्रतिशत् बिपरीत है जब कि इस स्थान पर करहिं (करेंगे) ऐसा आशा बोधक वैय्याकर्णिक सौष्ठवपूर्ण शब्द इन समस्त दोषों को हरण करने में समर्थ है।

जेहि जन पर ममता अरु छोहू, जेहि करुणा कर कीन्ह न कोहू॥

उपरोक्त चौपाई में जेहि शब्द को ही दो बार प्रयोग करके सिद्ध कवि गोस्वामी तुलसीदास जी (नाना पुराणनिगमागम विज्ञ) के व्याकरण ज्ञान की खिल्ली उड़ाई गई है, जबकि जहाँ, तहाँ, जब, तब, जेहि, तेहि का प्रयोग मानस में अनेक स्थानों में प्राप्य है। न जाने क्यों 'जेहि करुणा कर कीन्ह न कोहू' के स्थान में 'तेहि करुणा कर कीन्हन कोहू' छापते हुये इन महात्माओं को पीड़ा का अनुभव हुआ। आश्चर्य का विषय है कि अभी तक विद्वद्वर्ग ने किंचित मात्र भी इस ओर दृष्टिपात नहीं किया। ऐसा क्यों ? क्या पूज्यपाद श्री गोस्वामीजी के तप, त्याग, विद्या, अनुभव तथा प्रभु प्रसाद रूप उनकी 'स्वान्तः सुखाय' अनुपम, अलभ्य, व्यापक तथा सर्वमान्य देन को आज निर्विकार रूप में सुरक्षित रखने वालों का जगत् से सर्वथा अभाव हो गया है ?

५—नागरी का नग्ननृत्यः—नागरी एक लिपि विशेष का नाम है। इसी में अब तक हिन्दी भाषा के समस्त धार्मिक, सामाजिक, व्यावसायिक तथा शिक्षा सम्बन्धी ग्रन्थ लिखे तथा छापे जाते हैं।

१—जबकि गीता प्रेस द्वारा मुद्रित 'श्री राम चरित मानस' की पोथी में सुन्दर काण्ड छापते समय सुन्दर इस प्रकार छपता है और शेष समस्त स्थानों में सुंदर को यह रूप देदिया गया है। क्या इन दोनों सुन्दर तथा सुंदर शब्दों के अर्थ अथवा व्युतिपत्ति में भी कोई अन्तर इन नवीन मानस मर्मज्ञों को भासित होता है ? इसी प्रकार के अन्य शब्दों की भी यही दुर्दशा निष्ठुरता पूर्वक की गई है। जैसे सन्त, मन्दिर, कन्दर, वृन्द, आनन्द, जन्तु इत्यादि के स्थान पर संत, मंदिर, कंदर, वृंद, आनंद तथा जंतु रूपों से मानस भरा पड़ा है जिनकी गणना सहस्त्रों से अधिक है। आवश्यकतानुसार प्राप्त कर लें।

२—गीता प्रेस द्वारा मुद्रित काण्ड शब्द इस प्रकार है परन्तु इसी प्रकार के शब्द खण्ड, मुण्ड, प्रचण्ड, दण्ड भुसुण्डी आदि शब्दों को क्रमशः खंड, मुंड, प्रचंड दंड, भुसुंडि रूप देकर तो अपनी लिपि विशेषज्ञता को पूर्णतः प्रमाणित कर दिया गया है।

इन की गणना भी सैकड़ों से आगे है। आवश्यकतानुसार पाठक पूर्ण विवरण प्राप्त कर सकते हैं।

पुनश्च—सम्मत को संमत, किन्नर, को किंनर तथा वर्रै को वररै रूप देकर तो नागरी की छीछालेदर अथवा नागरी का नग्ननृत्य ही प्रदर्शित किया गया है।

६—अनुशासनहीन सानुनासिकता—इस शीर्षक के अन्तर्गत हम केवल सानुनासिक शब्दों पर विचार करेंगे कि किन-किन स्थानों पर सानुनासिक शब्दों को असानुनासिक तथा असानु-

नासिक शब्दों को सानुनासिक छापने का व्यर्थ तथा असफल प्रयत्न साहित्यिक जनता की दृष्टि में कितना असह्य तथा अक्षम्य अपराध है।

। अनावश्यक संयोग ।

(दर्शनीय स्थल)

रायँ सुभायँ मुकुरु करलीन्हा, वदनु विलोकि मुकुटु सम कीन्हा।
२/१/६

यहाँ राय शब्द के ऊपर चन्द्र विन्दु की आवश्यकता क्यों हुई यह भी एक जानने की बात है गीता प्रेस वालों से। परन्तु भगवान जाने इन आविष्कारकों को आविष्कार का अर्थ और प्रयोग भी ज्ञात है या नहीं।

करि केहरि निसिचर चरहिं दुष्ट जंतु बन भूरि।
विष वाटिकाँ कि सोह सुत सुभग सजीवन मूरि॥ २/५६/०

दरसन देव जानि निज दासी, लखी सीयँ सब प्रेस पियासी॥
२/११७/३

तुलसी तरुवर विविध सुहाये, कहुँ कहुँ सियँ कहुँ लखन लगाये॥
२/२३६/७

वट-छायाँ वेदिका बनाई, सियँ निज पानि सरोज सुहाई॥
२/२३६/८

(आवश्यकता में अभाव)

बूढ़ भयेसि नतु मरतेउँ तोही, अब जनि नयन देखावसि मोही॥
६/४८/२

भरतहि कुशल हमारि सुनायहु, समाचार लै तुम्ह चलि आयहु ॥
६/१२०/२

विकट भृकुटि कच घूघर वारे, नव सरोज लोचन रतनारे ॥
१/२३२/४

बरु विलोकि दंपति अनुरागे, पाय पुनीत पखारन लागे ॥
१/३२३/८

अब तोहि नीक लाग करु सोई, लोचन ओट बैठु मुहु गोई ॥

उपरोक्त पाँचों चौपाइयों में तोहीं, मोहीं, भरतहिं, घूँघर-वारे, पाँय, तोहिं तथा मुँह सभी शब्द सानुनासिक होने आवश्यक थे। परन्तु गीता प्रेस के कार्यकर्ताओं ने विचारे इन भावुक शब्दों का यह सौभाग्य भी वरजोरी तथा हठ पूर्वक छीन लिया है।

७—पाठ-लोप—पाठ को, कहाँ-कहाँ से लुप्त कर दिया गया है, इसका निर्णय उस समय तक पूर्ण रूपेण न्याय पूर्वक नहीं हो सकता जब तक किसी एक पाठ को सर्व सम्मत न मान लिया जावे। फिर भी पुरास्मृति के आधार पर कतिपय स्थल उद्धृत किये जा रहे हैं।

अरण्य काण्ड में श्री जानकी जी के हठ पर भगवान श्री राम के सहायतार्थ जाते समय शेषावतार श्री लषनलाल द्वारा श्री जनक नन्दिनी के रक्षार्थ खींची गई रेखा सर्व मान्य है। परन्तु गीता प्रेस द्वारा मुद्रित मानस की प्रति में रेखा खींचने से सम्बन्धित चौपाई का ही पता नहीं है। यथा—

चहुँ दिशि रेख खँचाइ अहीशा, बार-बार नायउ पद शीशा ॥

वस्तुतः श्रीगो स्वामीपाद सिद्ध कवि थे उनके साहित्य की चोरी छिप नहीं सकती। अतएव लंका काण्ड में राजदूत अंगद जी के सफलता पूर्वक श्री रामशरण में लौट जाने के पश्चात् जब रावण पुनः अपने निजी कक्ष में पहुँचा तब उसकी सती साध्वी भगवद्भक्ता रानी मन्दोदरी समझाने के लक्ष से भगवान सर्वान्तर्यामी श्री राम के यथार्थ स्वरूप के द्वारा रावण के हठ को छुड़ाने का शाब्दिक प्रयत्न करने लगी, और उसी प्रयत्न की सफलता इच्छा से प्रेरित हो निशाचर राज रावण की एक मीठी चुटकी भी ले डाली।

रामानुज लघु रेख खँचाई, सो नहिं नाघेउ अस मनुसाई ॥

६।३५।२

धन्य हो बाबा तुलसी दास और आपका पराक्रम। अपराधियों से ही कहलवा लिया कि हमने आपका पाठलोप (अपराध) किया है।

सुहृदय पाठक ! यदि लक्ष्मण जी ने रेखा खींची ही नहीं, जैसा कि गीता प्रेस द्वारा मुद्रित मानस प्रमाणित करता है, तो मन्दोदरी किस रेखा का वर्णन कर रही है ?

सुन्दर काण्ड मानस माला का सुमेरु है। इसका प्रत्येक्र पद मंत्र है, ऐसी महापुरुषों की सर्व सम्मति है। ऐसे परम सुन्दर 'सुन्दर' में लुप्त-पाठ-प्रक्रिया-पातक का अनुकरण करने में मुद्रण कला प्रवीण गीता प्रेस स्थित दिग्गज महारथियों ने किंचित संकोच न किया। कम से कम 'हनुमानु' को हनुमान जी पर तो

कृपा करनी ही थी। क्योंकि राशि भ्रातृ सम्बन्ध भी अनिवार्य मान्य है।

सिंधु वचन सुनि कान, तुरत उठेउ मैनाक तब,
कपि कहँ कीन्ह प्रनाम, पुलकित तनु कर जोरि करि।

यह सोरठा गीता प्रेस द्वारा मुद्रित रामायण में सम्भवतः स्थान पाने की योग्यता ही नहीं रखता था—सम्पादक जी की दृष्टि में।

किष्किन्धा में मारुति नन्दन श्री हनुमान जी द्वारा नाना प्रकार के प्रश्न किये जाने पर कि आप कौन हैं?

की तुम तीनि देव मँह कोऊ, नर नारायण की तुम्ह दोऊ॥
४।०।८

दो०—जग कारण तारण भव भंजन धरणी भार।
की तुम्ह अखिल भुवन पति लीन्ह मनुज अवतार॥
४।१।०

जिस समय उपास्य तथा उपासक दोनों साकार बहुरूपिये बने हुये थे। राघवेन्द्र सरकार के द्वारा गोस्वामी पाद उत्तर दिलाने से पहिले भूमिका रूप में इस चौपाई का दिग्दर्शन कराते हैं। क्या?

सुनि/हँसि बोले रघुवंश कुमारा, विधि कर लिखा को मेटन द्वारा॥

परन्तु धन्यवाद के पात्र हैं हमारे उत्साह वर्धक गीता प्रेसाधिकारी जिन्होंने इसे भी मानस से समूल निकाल फेंकने का दुस्साहस कर ही डाला।

आज श्री गोस्वामी तुलसीदास द्वारा ग्रंथित राम चरित्र एवं नर चरित्र निर्माण कार्य रूप सर्व माननीय श्री मानस जी को इस प्रकार अपने अपने मन माने संशोधन रूप आविष्कारों द्वारा दूषित करके इस सर्वोपासनीय ग्रन्थ को विभिन्न रंग रंजित चीथड़ों द्वारा निर्मित घृणित तथा उपेक्षित कंथा (कथरी) बना देने पर गोस्बामी जी के ही उच्छिष्ट प्रसाद विक्रय द्वारा उदर पोषी प्रख्यात व्यवसाई समाज बुरी तरह कटिवद्ध है, परन्तु अभी तक निवारकों एवं सुधारकों के कानों पर जूँ भी नहीं रेंग रही।

८—छन्द व्यतिक्रम—प्रार्थना के (वन्दना के) सात श्लोकों के पश्चात् मानस का श्री गणेश सोरठा से होता है, यह गणना में ५ हैं। इसके पश्चात् सिद्ध कवि ने ८ चौपाइयाँ देकर दोहे का उल्लेख किया है जो इस प्रकार है—

यथा सुअंजन आंजि दृग साधक सिद्ध सुजान।
कौतुक देखहिं शैल बन भूतल भूरि निधान॥
१।१।०

इस दोहे पर एक का अंक है और इससे प्रथम के पाँचों सोरठों पर ५ तक के अंक अंकित हैं। अतएव गीता प्रेस के ही सिद्धान्तानुसार दोहा अलग तथा सोरठा अलग छन्द हैं। इनकी संख्या भी अलग २ इनके प्रयोग क्रमानुसार ही होनी आवश्यक है।

परन्तु थोड़ी दूर चल कर ही उसी सिद्धान्त को ठोकर मार दी जाती है। प्रत्यक्षः—

प्रनवऊँ पवन कुमार, खल गन पावक ज्ञान घन।
जासु हृदय आगार, बसहिं राम सर चाप धर॥
१।१७।०

न्याय पूर्वक इस सोरठे की क्रम संख्या सात होनी चाहिये थी, परन्तु गीता प्रेस के अंध लष्टिका न्याय शास्त्रियों द्वारा अन्तर्यामी श्री राम उनका ही भण्डा-फोड़ करने को तत्पर हैं अतएव यह नियम प्रेस-प्रेतों द्वारा मानस में आद्योपान्त सन्नद्ध होकर निभाया गया है। प्रमाण में उपरोक्त सोरठे को १७ का अंक प्रदान ही पर्याप्त है। देखिये:—

संकर उर अति छोभु, सती न जानहिं मरमु सोइ।
तुलसी दरशन लोभु, मन डर लोचन लालची॥
१।४८।ख

क्रम न्यायानुसार यह सोरठा आठवाँ सोरठा है परन्तु इसकी क्रम संख्या उपरोक्त मानस में ४८/ख है। सम्भवतः यह स्थल मानसानुवादक 'पोद्दारु' महोदय की अन्वेषी दृष्टि से भी निकल भागा। पहिले तो दोहे के संख्या क्रम से दूसरे (१ आगे) की संख्या उसके पड़ोसी सोरठे की थी परन्तु यहाँ तो एक क्रम संख्या ४८ को (क, ख) दो विभाग देकर (क) भाग दोहे को और (ख) भाग सोरठे को देदिया गया। क्या अन्धेर है? जब स्वयं परम वैष्णव श्री गोस्वामीपाद मानस वर्णन में सुस्पष्ट कह गये हैं— क्या:—

पुरइनि सघन चारु चौपाई, जुगुति मंजु मनि दीप सुहाई।
छन्द, सोरठा, सुन्दर दोहा सोइ बहुरंग कमल कुल सोहा॥
१/३६/४-५

इस प्रकार छन्द, सोरठा, दोहा, चौपाई यह सब भिन्न-भिन्न स्वतन्त्र छन्द हैं, इन्हें एक दूसरे में वरजोरी घुसेड़ना पाप है।

विचार पूर्वक

बार बार कह राउ सुमुखि, सुलोचनि पिक बचनि ।
कारन मोहिं सुनाउ गज गामिनि निज कोप कर ॥ २/२५/०

यह सोरठा अयोध्या काण्ड का सर्व प्रथम सोरठा है जिसमें सम्पादक महोदय ने २५ क्रम संख्या लगादी है क्योंकि इससे ऊपर वाले दोहे का नम्बर २४ है। बुद्धि की सार्थकता यही तो है। कहिये ?

सो०—उमा राम गुन गूढ़ पंडित मुनि पावहिं बिरति।
पावहिं मोह विमूढ़ जे हरि बिमुख न धर्म रति॥

यह सोरठा अरण्य काण्ड का सर्व प्रथम सोरठा है। इस पर क्रम संख्या का सर्वथा अभाव है मानो सम्पादक की लेखनी शीघ्रता में इस पर से कूद गई है।

न्याय—

सो०—मुक्ति जन्म महि जानि, ज्ञान खानि अघ हानि कर।
जहँ बस संभु भवानि, सो कासी सेइय कस न ?
जरत सकल सुर बृंद विषम, गरल जेहिं पान किय।
तेहि न भजसि मन मंद को कृपालु संकर सरिस॥

यह दोनों सोरठे किष्किन्धा काण्ड के आदि के हैं विचारे यह अकिंचन भी प्रेस की परीक्षा में संख्या हीन हो कर असफल ही रहे। क्या है ?

सिन्धु बचन सुनिकान तुरत उठेउ मैनाक तब।
कपि कहँ कीन्ह प्रणाम हरषित हिय कर जोरि करि॥

यह सोरठा सुन्दर काण्ड का सर्व प्रथम सोरठा है परन्तु

इसे तो समूल को छापना ही भूल गये धन्यवाद है इन पूँजी पतियों को जो समर्थ होने के नाते कभी दोषी सिद्ध होते ही नहीं। "समरथ को नहि दोष" यह सब क्या है ? क्यों है ? किस प्रकार है ? किस विधानान्तर्गत है ? पूछने पर भी केवल रूखे मुँह से "क्या है ?" कह कर गीता प्रेस सम्बन्धी समस्त अधिकारीवर्ग काष्ठ मौन ले चुका है। अन्यायः—

दो०—लव निमेष परमानु जुग बरष कलप सर चंड।
भजसि न मन तेहि राम को कालु जासु कोदंड ॥

सो०—सिंधु वचन सुनि राम, सचिव बोलि प्रभु अस कहेउ।
अब विलम्ब केहि काम, करहु सेतु उतरै कटकु ॥
सुनहु भानु कुल केतु जामवंत कर जोरि कह।
नाथ नाम तव सेतु, नर चढ़ि भव सागर तरहिं ॥

यह लंका काण्ड का प्रारम्भ है। सर्व प्रथम एक दोहा तत्पश्चात दो सोरठे, इन पर भी कोई क्रम संख्या नहीं है। सम्भवतः गीता प्रेस के कार्यकर्ताओं को स्मरण होगा कि "अतिशय रगड़ करे जो कोई, अनल प्रगट चन्दन ते होई" 'अति सर्वत्र वर्जित है' न्याय का विधान आवश्यक है अन्यथा "आगे नाथ न पीछे पगहा, खाइ मोटाइ हो गये गदहा" ही चरितार्थ होगा। पुनश्च ठीक इन दोनों सोरठों के पश्चात् दस चौपाइयाँ लिख कर गोस्वामी जी एक दोहे का उल्लेख करते हैं।

अति उतंग गिरि पादप लीलहिं लेहिं उठाइ।
आनि देहिं नल नीलहिं रचहिं ते सेतु बनाइ ॥ ६/१/०

इस दोहे पर एक की संख्या दी गई है। क्या कहें इन निरंकुशो से । दमन:—

भरत चरन सिरु नाइ तुरित गयउ कपि राम पहिं।

कही कुशल सब जाय हरषि चलेउ प्रभु जान चढ़ि ॥ ७/२/ ख

यह सोरठा उत्तर कण्ड में सर्व प्रथम सोरठा है जो दोहा सं० २ के पश्चात् आता है अतएव इस पर भी दयालु महानुभावों द्वारा २ (ख) संख्या डाली गई है। सम्भवतः भिन्न संख्या का अभाव था।

समस्त मानस में गीता प्रेस के मुद्रक, प्रकाशक, प्रबन्धक, प्रचारकों तथा सम्पादक की आविष्कार कृपा के फल स्वरूप यह धमा-चौकड़ी ऊधम, अन्याय तथा दमन बाल काण्ड में २० बार, अयोध्या में ६ बार अरण्य में ७ बार, किषकिन्धा में ३ बार, सुन्दर २ बार, लंका में ८ बार, तथा उत्तर में १५ बार कुल (६४ बार) मदान्धतापूर्ण अविवेक को साहित्य विकृति द्वारा जनता में प्रचारित करने का प्रयत्न किया गया है। उन्हें ज्ञात होना चाहिये कि साहित्य पर ही समाज, धर्म, देश तथा जाति की नींव स्तम्भित है। इन भ्रम बुद्धि विक्रयी समाज को प्रायश्चित् रूप में क्या आदेश देना उचित होगा यह पाठक ही जानें ?

श्री राम चरित मानस के उपसंहार शीर्ष भाग उत्तर काण्ड के आदि में २ श्लोक लिखने के पश्चात भक्त कवि ने पुनः ६ श्लोक रुद्राष्टक के लिखे जिनपर सम्पादक वर्ग ने पुनः नयेक्रमसे

६ संख्यायें डाली। तदुपरान्त पुनः रामदास सिद्ध कवीश्वर गोस्वामी पादने "विनिश्चितं वदामिते न अन्यथा वचांसि मे; हरिं नरा भजन्ति येऽतिदुस्तरं तरन्ति ते" इस श्लोक की रचना की। परन्तु इस श्लोक पर पुनः वही प्रथा जो सोरठों के क्रम में अपनाई थी कार्य रूप में परिणित की गई और इसकी क्रम संख्या १२२ (ग) करदी गई। जब कि इस की क्रम संख्या १३ होनी थी।

उपरोक्त समस्त आठों दोषों का सप्रमाण चित्रण करके केवल मात्र आशा पूर्ण इच्छा तथा करबद्ध प्रार्थना है कि गीता प्रेस तथा उसके अधिकारी शीघ्रातिशीघ्र इन सब को लेखक की आँखों से देखें और देश, जाति, धर्म, समाज, साहित्य, संस्कृति तथा मानवता के रक्षार्थ शीघ्र इन दोषों को हटाकर श्री राम चरित मानस का शुद्ध तथा निर्विकार संस्करण प्रकाशित करें। साथ ही साथ आप भी मुझ दीन हीन अकिंचन को इस मानस मूल संशोधन में गीता प्रेस को इस परमावश्यक पुण्य तथा अनिवार्य कार्य के लिये प्रस्तुत, सन्नद्ध तथा विवश करने के लिये भगवान श्री राम को ही साक्षी मान कर यथा साध्य सहयोग दान देकर कृतार्थ करें।

शोध संस्थान
15342
अयोध्या
श्री ... दास छावनी सेवा ट्रस्ट

विनीतः—
आनन्द स्वामी
मंगल भवन, रिषीकेश
(हिमालय)